संपादकीय

युद्ध का विकल्प

ब्रह्मांड उल्टी-सीधी, सकारात्मक-नकारात्मक शक्तियों के द्वंद्व, संघर्ष और घर्षण में संचालित है, ठीक वैसे ही यह संसार युद्ध और शांति की शाश्वत कशमकश में सदा से छटपटाता रहा है। कहाँ युद्ध वरेण्य हो और कहाँ शांति अपेक्षित हो - इसका कोई सीधा-सच्चा और स्पष्ट विभाजक खाँचा खींचना दुष्कर है। हालाँकि श्रेष्ठतर शक्तियों, शास्त्रकारों और वैश्विक मनीषी-विचारकों ने शांति का संदेश दिया है, पर युद्ध को अपरिहार्य नहीं माना, क्योंकि त्याज्य मान लेने मात्र से युद्ध से मुँह मोड़ा नहीं जा सकता। लड़ाई-झगड़े में दो पक्ष होते हैं, एक अनमनस्क हो तो भी दूसरे पक्ष के प्रत्यक्षतः ललकारते हुए आ धमकने और परोक्षतः उकसाने वाली कार्रवाई का जवाब देने के लिए लड़ने के सिवा चारा भी क्या बचता है? इसीलिए यूक्रेन पर रूसी आक्रमण को युद्ध तो कहा जा रहा है, पर एक तो यह रूस की ओर से एकतरफा हमला है, जिसमें सारा युद्धक्षेत्र यूक्रेन का भूभाग है, बोर्डर या रूसी जमीन नहीं और दूसरा, इस हमले का जवाब देने के लिए यूक्रेन को मजबूरन लड़ना पड़ रहा है, जो अब तक युद्ध टालने का उपाय खोजता रहा है, भले सफलता न मिली हो या शक्ति संतुलन उसके पक्ष में न हुआ हो। जिन नाटो देशों विशेषकर अमेरिका के भरोसे यूक्रेन अबकी बार रूस की तरफ नहीं झुका, उन्होंने भी युद्ध उतरने से दूरी बनाये रखते हुए स्वीकर किया कि सीधे तौर पर रूस को रोकने का मतलब है तीसरे विश्वयुद्ध को आमंत्रित करना, जो कितना भयंकर विनाशक होगा - इसका पहले से अनुमान लगाना मुश्किल है।

बहरहाल, यूक्रेन पर रूस के आक्रमण से भारतीय शिक्षा व्यवस्था, उसमें भी चिकित्सा शिक्षा पर नई बहस छिड़ गई है। भारत से बाहर शिक्षा ग्रहण करने जाने वालों के बारे में आम तौर पर रूढ़ प्रचलन रहा है कि वही छात्र विदेश में शिक्षा ग्रहण करने जाते हैं, जिनके अभिभावक नेता, नौकरशाह, पूंजीपति की तरह साधन-संपन्न, दूसरे शब्दों में अर्थ-संपन्न हैं। भारत के शिक्षण संस्थानों के निर्माता व कर्ताधर्ता भी हैं, पर स्वयं विदेशी संस्थाओं के बनिस्बत इन्हें कमतर आँकते हैं। वास्तविकता भी लगभग यही बनी हुई है। विश्व के श्रेष्ठ शिक्षण संस्थानों में भारत के संस्थान कम गिने जाते हैं। अस्तु, रूस-यूक्रेन 'युद्ध' के बीच भारतीय छात्रों की कष्टपूर्ण वापसी से परंपरागत मिथ टूटा है। यह जानकारी आम हुई है कि यहाँ मेडिकल शिक्षा (सरकारी कालेजों को छोड़ दिया जाए तो) बहुत महंगी पड़ती है; फिर मेधा-मेरिट के बावजूद छात्रों को प्रवेश नहीं मिल पाता, फलतः विदेश भागना पड़ता है। वहाँ की डिग्री की मान्यता है, पर यहाँ आकर टेस्ट पास करना जरूरी होता है, तभी प्राक्टिस किया जा सकता हैं। सर्वविदित तथ्य है कि बहुत कम प्रतिशत विद्यार्थी ही इस टेस्ट को पास कर पाते हैं, फलतः उन्हें किसी डॉक्टर के साथ काम करना पड़ता है या फिर कम्पाउंडरी करनी पड़ती है। अच्छी शिक्षा कहीं से भी मिले, ग्रहण करने में हर्ज नहीं है। व्यक्ति, समाज, राष्ट्र को आत्मनिर्भर बनाने की पहल में सर्वप्रथम शिक्षा नीति और ढाँचे का आत्मनिर्भर विकास आवश्यक है। बात-बात में मैकाले को कोसते रहने की बजाय भारत की शिक्षा संरचना को सुदृढ़ व आत्मनिर्भर बनाने की ओर शीघ्रता से बढ़ना चाहिए।

अस्तु, युद्ध और शांति के जटिल द्वंद्व को दूर करने के लिए ही भगवद्गीता का प्रादुर्भाव हुआ था। श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि युद्ध करने का निश्चय करके खड़े हो जाओ - 'तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृत निश्चय:।' 1865 के आसपास रूसी लेखक टॉल्सटाय ने बड़ी शक्तियों से लड़ने वाले रूसी लोगों का अभिनंदन करने वाली विश्व प्रसिद्ध पुस्तक 'युद्ध और शांति/समाज' की रचना की, जिसमें युद्ध के व्यापक प्रभाव की विस्तारपूर्वक चर्चा है। हिंदी में रामधारी सिंह दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र', 'रश्मि रथी' और 'परशुराम की प्रतीक्षा' जैसे काव्य-ग्रंथों में इस उलझन को तर्क-वितर्क के सहारे समझने-समझाने का यत्न किया है -

युद्ध को तुम निन्द्य कहते हो, मगर/जब तलक हैं उठ रहीं चिनगारियाँ;
भिन्न स्वार्थों के कुलिश संघर्ष की/युद्ध तब तक विश्व में अनिवार्य है।
और जो अनिवार्य है, उसके लिए/खिन्न या परितप्त होना व्यर्थ है।
तू नहीं लड़ता, न लड़ता, आग यह/फूटती निश्चय किसी भी व्याज से।

निष्कर्ष यह कि शांति श्रेष्ठ है, युद्ध निंद्य; शांति आदर्श है, युद्ध यथार्थ; शांति स्वप्न है, युद्ध नशा: शांति वरणीय है, पर युद्ध संसारी है। युद्ध कारक है, पर उसके परिणामस्वरूप क्या 'शांति' स्थापित होगी? जीवन में संघर्ष तो होगा ही, किंतु किससे और कब? कहाँ और किसलिए - इसका निर्णय करने का विवेकसम्मत अधिकार आपके हाथों में है, पर समूचा नहीं, कुछ हद तक ही।